

दलित जीवन का दस्तावेज : दलित आत्मकथाएँ

शोधार्थी

तारा चंद कटारिया

महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय,

अजमेर, राजस्थान

दलित आत्मकथा दलित आंदोलन और लेखन की उपज है। यह आत्मकथन इस आंदोलनधर्मी लेखन के बहुमूल्य हिस्से है, इन्हें दलित जिंदगी का दस्तावेज भी कहा जा सकता है। दलित आत्मकथाएँ वस्तुतः संपूर्ण भारतीय समाज के दस्तावेज हैं, जिनका साहित्यिक दृष्टि से अध्ययन तो जरूरी है ही उससे कहीं ज्यादा इनका समाजशास्त्रीय अध्ययन भी आवश्यक है। सामाजिक वास्तविकता के विविध पहलू इन आत्मकथाओं में दर्ज हैं।

दलित लेखन की सर्वाधिक चर्चित विधा आत्मकथन है। इसका प्रारंभ डॉ. बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर के आत्मकथ्य— "मेरा जीवन" से मानी जाती है। यह आत्मकथ्य 'जनता पत्र' के 6 नवंबर, 1954 के अंक में छपा था। इसमें डॉक्टर अंबेडकर ने—'मेरा जीवन' नाम से एक संपूर्ण आत्मवृत्त लिखने की योजना का जिक्र किया है। उनके ही शब्दों में, "सभी स्मृतियों को समेट कर एक आत्मकथा लिखने का मेरा विचार है। समग्र आत्मकथा न लिखूं तो कम से कम 'मेरा बचपन' नाम से एक पुस्तक जरूर लिखूंगा।"¹

1956 में डॉ. अंबेडकर का निधन हो जाने के कारण आत्मकथा लिखने की उनकी योजना साकार नहीं हो पायी। अंबेडकर की चेतना के साथ लिखी गई शुरुआती आत्मकथाओं में शंकरराव खरात की "तराल—अंतराल" (1976), दया पंवार की "बलतू" (1978), माधव कोंडविलकर की "मुक्काम पोस्ट देवाचे गोठणे" (1979) के नाम लिए जा सकते हैं। लेकिन किसी दलित के पहले आत्मकथन के रूप में नाम लेना हो तो हजारी द्वारा लिखित "आई वाज एन आउटकास्ट इंडियन" (1951) को रखा जा सकता है। अपनी उपलब्धियों का आकलन करने के लिए जीवन के अंतिम दौर में आत्मकथाएँ लिखने का प्रचलन रहा है, परंतु दलित आत्मकथन गैर दलित आत्मकथन से भिन्न होते हैं, यह भिन्नता उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि के कारण है। दलित आत्मकथन अपने पूरे समुदाय की वेदना की अभिव्यक्तियाँ हैं। इन्हें लिखने के लिए दलित लेखक अपने बूढ़े होने का इंतजार नहीं करता, यह वर्ण व्यवस्था द्वारा थोपी गई दम घोटू मर्यादाओं में जीते हुए अपने समुदाय की व्यथा—कथा लिखता है। इस व्यथा का इतिहास सदियों पुराना है। दलित लेखक को जो सामुदायिक समृति मिली है, वह भी शताब्दियों की है। ऐसे आत्मकथनों में "व्यक्ति" महत्वपूर्ण नहीं होता है। संघर्ष का इतिहास, उत्पीड़न की परंपरा, जीवन स्थितियों का ब्यौरा महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि यह सब एक व्यक्ति (लेखक/लेखिका) द्वारा कलमबद्ध होता है। इसलिए उसको निजी जिंदगी, उसका व्यक्तित्व भी निर्णायक भूमिका में आ जाते

हैं। स्वयं चेतना संपन्न होने के बाद वह उस परिवर्तन कामी चेतना का प्रसार विस्तार करना चाहता है और इसी क्रम में उसका आत्मकथन रचा जाता है।

जाहिर है कि दलित आत्मकथन का वैशिष्ट्य उसकी अंतर्वस्तु के कारण है। यही वजह है कि कई चिंतकों ने इस विधा के नाम पर पुर्नविचार किया और पहले से प्रचलित नाम 'आत्मकथा' के प्रयोग पर अपनी आपत्ति दर्ज की। ऐसे विचारको में मराठी के वरिष्ठ चिंतक व अंबेडकरवादी रचनाकार यशवंत मनोहर है। उनके शब्दों में—“आत्म” शब्द अपने साथ कर्म सिद्धांत लेकर आता है। कर्म सिद्धांत का संबंध वर्ण—व्यवस्था के साथ है।...यहाँ की संस्कृति ने आत्म की अवधारणा द्वारा ऐसा विलक्षण दर्शन, विषमता का जहरीला विचार—व्यूह प्रस्तुत किया है, जो विश्व के किसी भी देश या समाज में नहीं है। दलितों के शोषण की केंद्रवर्ती आधारशिला भी यह “आत्म” शब्द है। इस शब्द का प्रयोग दलितों के स्वकथन के साथ लगाना वास्तव में उनकी नास्तिक प्रेरणाओं का मजाक उड़ाना है। इस कारण दलितों के अनुभव कथन पर लेखक के लिए “स्वकथन” शब्द का ही प्रयोग होना चाहिए।”²

एक बहस कथा शब्द को लेकर भी उठाई गई। कथा काल्पनिक होती है, रंजनार्थ होती है, जबकि दलित जीवन में यथार्थ और वेदना मुख्य है। इसलिए कथा के स्थान पर 'कथन' शब्द के इस्तेमाल का आग्रह हुआ है। मराठी दलित आलोचना में अब “आत्मकथा” विधा को 'स्वकथन', स्ववृत्त, आत्मवृत्त, 'अंबेडकरवादी आत्मकथन' आदि कहा जाता है। इस शब्द—सजगता का प्रभाव अन्य भाषाओं के दलित साहित्य पर भी पड़ा है।

प्रसंगवश यह भी याद कर लिया जाए कि मराठी से अनूदित हुई कई दलित आत्मकथनों को हिंदी प्रकाशकों ने “आत्मकथात्मक उपन्यास” बताते हुए छपा— 'अछूत'—(दया पवार), 'यादों के पंछी'—(प्रा.ई. सोनकांबले), 'अक्करमाशी'—(शरण कुमार लिबांले) आदि के आत्मकथनों को 'आत्मकथात्मक उपन्यास' लिखने के बावजूद पाठकों ने उन्हें उपन्यास नहीं माना, इसलिए परवर्ती आत्मकथनों को उपन्यास कहने की प्रवृत्ति पर रोक लग गई। दलित आत्मकथनों की रचना—प्रक्रिया को समझने के लिए कुछ बुनियादी बातों की चर्चा जरूरी है इनमें से तीन मुख्य बिंदु हैं—

- (1)—विद्रोही चेतना
- (2)— इतिहास बोध, और
- (3)— भविष्य—दृष्टि।

किसी भी अंबेडकरवादी आत्मकथन की निर्मिति, लक्ष्य और प्रभाव इन तीनों बिंदुओं से अनिवार्य जुड़ा होता है। रचनाकार की विद्रोही चेतना इन तीन चीजों से मिलकर बनती है—

- (1)— मेरे पूरे समुदाय का दुख मेरा दुख है, और मेरा दुख सिर्फ मेरा नहीं है।
- (2)— यह दुख वर्ण—जाति वादी समाज—व्यवस्था की देन है।

(3)– मैं इस व्यवस्था को सिरे से अस्वीकार करता हूँ और प्रयत्नशील हूँ कि पूरा समाज या कम से कम मेरा समुदाय ऐसा ही करें।

अम्बेडकरवादी लेखक/लेखिका इतिहास बोध से कभी विच्छिन्न नहीं होता। उसके इतिहास बोध का आशय है—

(1)– वर्चस्व का कोई दैवीय आधार नहीं होता। सनातनता, दैवियता, और ईश्वरवाद प्रभुत्व को कायम रखने की तरकीबें हैं।

(2) मनुष्य के विकास—क्रम को वैज्ञानिक दृष्टि से परखा जाना, और

(3) शोषण और उत्पीड़न के सभी रूपों का संज्ञान— इसमें विकास, विस्थापन और शासन से जुड़े मुद्दों के साथ आंतरिक जातिवाद तथा पितृसत्ता के मुद्दे विशेष रूप से शामिल हैं।

भविष्य दृष्टि के अंतर्गत निम्न बिंदु विचारणीय हैं :—

1) वैकल्पिक समाज की संभावना में यकीन प्रतिरोध की संस्कृति से संबद्धता।

2) समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व जैसे मूल्यों में विश्वास।

3) दलित अस्मिता के लिए संघर्ष लेकिन इस अस्मिता को ही अंतिम नमानकर संपूर्ण मनुष्यता की बेहतरी का लक्ष्य।

पारंपरिक साहित्य विमर्श में आत्मकथा विधा को कभी इतना महत्व नहीं दिया गया। भारत में इस विधा की पहली कृति बनारसीदास जैन कृत "अर्ध कथा" मानी जाती है। इसके बाद एक लंबे समय तक कोई आत्मकथात्मक कृति सामने नहीं आई। आधुनिक काल में इस विधा को कुछ एक लेखकों एवं जन नायकों ने अपनाया परंतु छिटपुट रूप में। तमाम गद्य विधाओं के बीच इसे दलित विमर्श और स्त्री विमर्श के उभार के बाद ही प्रतिष्ठा मिली।

सामाजिक परिस्थिति भारतीय साहित्य विमर्श खासकर संस्कृति साहित्य शास्त्र में गद्य लेखन को दो रूपों में बांटा गया—कथा और आख्यायिका। कथा की निर्मिति कल्पना के सहारे होती है और आख्यायिका ऐतिहासिक चरित्रों पर लिखी जाती है। बाणभट्ट की दो रचनाओं से इनके उदाहरण दिए जाते रहे हैं — 'कादंबरी' कथा है और 'हर्षचरित' आख्यायिका। बाणभट्ट सम्राट हर्षवर्धन, 606 –647 के दरबार में थे। हर्षचरित में बाणभट्ट ने सम्राट की जिंदगी को शब्दबद्ध करने के साथ स्ववृत्त भी लिखा है। भारत में आत्मकथा लेखन का यह पहला प्रयास मानना चाहिए। साहस का परिचय देते हुए बाण ने लिखा है कि उनके पिता की एक शूद्र पत्नी भी थी, जिनसे दो पुत्र हुए थे। तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति की यह एक तस्वीर है। लेकिन, सच तो यह है की संस्कृति के साथ अन्य भारतीय भाषाओं में भी लेखकों ने अपनी जिंदगी का सच है सीधे तौर पर लगभग नहीं लिखा है। जो सच हमें मिलता है, वह एकांगी है। साहित्य को समाज का दर्पण भले ही कहा जाता रहा हो मगर

इस दर्पण का आयतन इतना छोटा, इतना चयनधर्मी रहा कि उसमें दलित समाज कहीं दिखता ही नहीं।

जब दलित लेखकों ने आत्मकथन लिखने की शुरुआत की तो इस दर्पण कादायरा ही नहीं बढ़ा, साहित्य की प्रकृति, वाग्मय विमर्श का स्वभाव भी बदल गया। भूख, गरीबी और अछूतपन में डूबी जिंदगी जब सीधे तौर पर आत्मकथन के रूप में आई तो पारंपरिक साहित्य के अभ्यासी व पाठक हतप्रभ रह गए और आलोचक हक्के-बक्के। इस साहित्य के प्रति उदासीनता, उपेक्षा और अस्वीकार्यता का रवैया अपनाकर इसे दबाने की कोशिश भी की गई मगर शताब्दियों से बाहर आने को बेचैन सच को रोका नहीं जा सका।

nfyr thou ds fofoek : i &

दलित जातियों की संख्या कम नहीं है, इनकी उपजातियाँ भी अनगिनत हैं। उनकी जीवन स्थितियों में एक स्तर पर समानता है तो दूसरे स्तर में अत्यधिक भिन्नता भी है। जाति का ढाँचा ऐसा की एक जाति दूसरी जाति से अजनबी बनी रहती है। "उपरा" आत्मकथन के लेखक लक्ष्मण माने का मानना है—"हमारे समाज में एक जाति के दुखों का पता दूसरी जाति को नहीं होता। संवेदना का आदान-प्रदान भी यहाँ नहीं हुआ है। साढ़े तीन प्रतिशत लोगों द्वारा लिखे गए साहित्य में समाज के दुर्बल वर्ग का चित्रण ही नहीं हुआ"।³

दलित लेखकों के शताधिक आत्मकथन पूणतया आंशिक रूप से अभी तक प्रकाशित हो चुके हैं, लेकिन कोई भी आत्मकथन एक जैसे नहीं हैं। यह आत्मकथन वस्तुतः एक-एक समुदाय की कहानी बयान करते हैं और इतने समुदायों की वास्तविकता सामने आने के बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि साहित्य में सभी दलित समुदायों का प्रतिनिधित्व हो चुका है। अभी कितने बहिष्कृत इलाके और कितने दलित समुदाय हैं जिनकी आवाज साहित्य में दर्ज ही नहीं हुई है। जिन आत्मकथनों की दलितों के समुदाय विशेष साहित्य जगत में प्रवेश पा सके उनमें कुछ की सूची इस प्रकार है—

- 1) महार समुदाय—'तराल-अंतराल', 'यादों के पंछी', 'जीवन हमारा' और 'अछूत', आदि।
- 2) जाटव या चमार— 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर', 'घुटन', 'मुक्कामपोस्ट', 'देवाचे गोहणे', 'अपने-अपने पिजरे', 'मेरा सफ़र मेरी मन्जिल', 'झोपड़ी से राजभवन' आदि।
- 3) वाल्मीकि या भंगी— 'मैं भंगी हूँ', 'जूठन', 'तिरस्कृत', 'शिकंजे का दर्द', 'संतप्त' आदि।
- 4) दबंगों की (दलित) रखैल से उत्पन्न संतान— अक्करमाशी।
- 5) विमुक्त जाति — पराया, उचक्का, बेडर आदि।
- 6) कोल्हाटी (नाचने गाने वाला समुदाय) छोरा कोल्हाटी का।
- 7) बंजारा—तांडा, डेरा डंगर ।

- 8) मातंग जाति –काट्यावरची पोट
- 9) पोतराज– आभरन
- 10) दलित ईसाई –खिस्ती महार,करक्यू
- 11) पंजाबी रामदासिया दलित– छांग्या रुक्ख
- 12) दलित स्त्री– दोहरा अभिशाप, आयदान, शिकंजे का दर्द आदि।

tkfr dfaer xkpk dh cukoV&

जाति आधारित सामाजिक संरचना में जातियों की सांस्कृतिक हैसियत के अनुसार उनकी बसावट तय होती है। एक पारंपरिक गांव में सवर्ण जाति या गांव के बीचो-बीच, मध्यम जातियां थोड़ा बाहर की तरफ तथा दलित बस्ती गांव के हाशिए पर प्रायः दक्षिण दिशा में हुआ करती है। दलित बस्ती की तरफ सामूहिक कब्रिस्तान, कूड़ा करकट फेंकने की जगह, घूर और मृत पशुओं की खाल उतारने की जगह होती है। गैर-दलितों के घर प्रायः पक्के या खपरैल हुआ करते हैं जबकि दलितों की छोटी-छोटी झोपड़ियां। अपने गांव (अकोला तालुका का घामन गांव) का लोकेशन बताते हुए दया पवार ने "अछूत" में लिखा है, "एक टीले पर महारवाड़ा। गांव के निचले हिस्से पर, ऐसा कहते हैं कि हवा और नदी का पानी उच्च जातियों को शुद्ध मिले, इसलिए गांव की रचना प्राचीन काल से इसी तरह की गई है। सबके घरों के दरवाजे गांव के विरुद्ध दिशा में।"⁴

अपने घर का वर्णन करते हुए शंकरराव खरात लिखते हैं, "घर के पिछवाड़े की भीत ऊँची थी और आगे की भीत एकदम छोटी, बोनी थी। हमारे मां-बाप और बड़ी बहन से इस छोटी दीवाल की बगल में सीधा खड़ा नहीं हुआ जाता था। इस और के सारे काम झुक कर ही करने पड़ते थे।..... हमारे घर की चौखट में किवाड़ों का दरवाजा नहीं था। कुत्ता-बिल्ली से बचाव के लिए अन्ना ने एक टटिया का ढक्कन बना लिया था।"⁵

बलबीर माधोपुरी अपने गांव माधोपुर (जालंधर, पंजाब) की बसावट का वर्णन करते हुए बताते हैं, "गांव देखने को हालांकि इकट्ठा है, पर पीने के पानी के लिए कुआं अपना अपना।"⁶

माधोपुर गांव बाद में बसा हुआ "गैर पारंपरिक" गांव है लेकिन जातिगत पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं है। पंजाब के बारे में आम धारणा यह है कि वह अपेक्षाकृत प्रगतिशील सूबा है, लेकिन दलित लेखकों ने इसकी असलियत पर पुनर्विचार के लिए बाध्य किया है।

सामाजिक उत्पीड़न की प्रकृति – जातिवादी सामाजिक संरचना ने उत्पीड़न के अनगिनत तरीके इजाद किए हैं। स्वर्ण नजरिए से देखा गया गांव उत्पीड़न की मौजूदगी को स्वाभाविक रूप से नजर अंदाज करता रहा है। "बाबा अब न बसब यहि गांव" कहकर कबीर ने गांव की जिस वास्तविकता का संकेत किया था, परवर्ती साहित्य में उस वास्तविकता के विवरण नहीं दिखे। आधुनिक काल में प्रेमचंद ने तथा दूसरे प्रगतिशील कथाकारों ने गांव में मौजूद उत्पीड़न के चित्र दिए, लेकिन यह चित्र

सीधे अनुभव से प्राप्त नहीं थे। साहित्य के समूचे इतिहास में दलित आत्मकथनों ने दलित बस्ती का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया है। यह एक उल्लेखनीय परिघटना थी, जिसके मोटे तौर पर पांच परिणाम दिखाई देते हैं—

- साहित्य में दलित जीवन अनुभवों का पहली बार दस्तावेजीकरण शुरू हुआ।
- दलित बस्ती का कटु यथार्थ है गांव के पारंपरिक रोमानी बोध को तोड़ने में सक्षम होगा।
- साहित्य को नई भाषा, नए मुहावरे, नए वाक्य विन्यास मिले, नया यथार्थ, पुरानी शब्दावली में व्यक्त नहीं हो सकता था।
- अनुभव आधारित लेखन को जांचने के लिए नए प्रतिमानों की जरूरत महसूस की जाने लगी। नए सौंदर्यशास्त्र के निर्माण की संभावना बननी प्रारंभ हुई।
- साहित्य और समाज के बीच की दूरी क्रमशः मिटने लगी। साहित्य बदलते समाज का आईना बना। और साथ ही उसने समाज को बदलने में अपनी भूमि का नया दौर आरंभ किया। भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य के विकास क्रम को सहूलियत के लिए पांच चरणों में बांटा जा सकता है—

वेदना, नकार, विद्रोह, विश्लेषण और विजन —

पहले चरण में दलित समाज की वेदना का चित्रण हुआ और उस वेदना को जन्म देने वाली परिस्थिति विशेषकर उत्पीड़न की। दूसरे दौर में दुखदाई व्यवस्था को नकारा गया। इसके बाद इस व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह का स्वर बुलंद हुआ। अगले चरण में यह चिंतन प्रमुख हुआ कि हमारी स्थिति ऐसी क्यों हुई? इस क्यों का विश्लेषण करते हुए पांचवें और वर्तमान दौर में विजन निर्माण पर विशेष बल दिया जाने लगा है। भविष्य का समाज कैसा हो, यह इस वक्त प्रतिरोध दलित साहित्य के लिए केंद्रीय प्रश्न है। दलित आत्मकथनों ने शुरू के तीन चरणों में अपनी विशेष भूमि का निभाई। अंतिम दो चरणों में अन्य विधाओं कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना और चिंतन परक गद्य की भूमि का ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई है। उत्पीड़न के स्वरूप की बात करें तो दलित आत्मकथाओं में भौतिक, मानसिक और मिश्रित तीनों तरह के उत्पीड़न दर्ज है। दलित बस्ती परहमला, पिटाई, आगजनी, आर्थिक दंड आदि भौतिक व शारीरिक उत्पीड़न है और तिरस्कार, अपमान, दुर्वचन, मानसिक संत्रास देता है। स्त्रियों का बलात्कार, शोषण, देह और मन दोनों को घायल करता है। दलितों को जूते पहनने पर प्रतिबंध, नए कपड़े पहनने पर रोक, बसियों के पास से गुजरने पर चारपाई से उठ जाने की मजबूरी, विवाह-शादी में घोड़ी पर बैठने पर पाबंदी जैसे मानसिक उत्पीड़न के अनगिनत प्रसंग इन आत्मकथनों में दर्द है।

दलित समुदाय को निरंतर आतंक के साए में रहना पड़ता है। दबंगों को हमले का बहाना भर चाहिए। वे सबक सिखाने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। इसी तरह की एक घटना अकरमाशी में दर्ज है: "किसी दलितयुवक ने स्वर्ण स्त्री की ओर तिरछी नजर से देखा था। उस स्त्री ने घर जाकर यह सब कह दिया। स्वर्ण स्त्री की ओर आंख उठाकर देखने की हिम्मत दलित करें। पूरा गांव इकट्ठा हुआ। बस्ती पर धावा बोल दिया गया। उस युवक को खींचकर बाहर लाया गया। बेतहाशा पीटा गया। कुछ ही दिनों बाद दलित बस्ती के सभी युवकों पर झूठे अदालती केस किए गए। अंततः उन युवकों को एक-एक वर्ष की सजा हुई। सजा भुगत कर अपने गांव आए तो उनमें से प्रत्येक की पत्नी को एक-एक संतति हो चुकी थी।"⁷

"छांग्या-रुक्ख" के लेखक ने अपने बापू और पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक दलित के बीच हुई बातचीत आत्मकथन में नोट की है। इसका एक अंश देखें: "पल भर की खामोशी के बाद बापू ने फिर बात शुरू की, 'यार, कभी-कभी तो मैं सोचता हूं कि इस मुल्क में हमारा है क्या ?... तू और सुन, तीसरे दिन जरीब-झंडियां उठाए पमैश (पैमाइश) के लिए आ जाते हैं और हमारे आंगन के बीच निशान लगा कर कहते हैं कि चमारों के सारे घर हमारी छोड़ी हुई शामिलत में है।'...."तुम लोग जमीन के टुकड़े की बात करते हो, मुझे तो लगता है जैसे हम गरीब की बहू-बेटियां उनकी शामिलत में हो" भइये ने बापू की बातबीच में काटते हुए जैसे किसी रहस्य की ओर संकेत किया।"⁸

उत्पीड़न के ऐसे प्रसंगों से दलित आत्मकथन भरे पड़े हैं। इन उत्पीड़नों का सिलसिला दूर तक जाता है। कहने को तो यह लेखक/लेखिका के व्यक्तिगत या पारिवारिक अनुभव है लेकिन असल में यह पूरे समाज का सच बयान करते हैं। उस सच का जिसका अतीत शताब्दियों तक फैला है और जनतंत्र के बावजूद जिसका वर्तमान व भविष्य फिलहाल महफूज नहीं लगता है। दलित आत्मकथा दलितों की जिंदगी के प्रामाणिक दस्तावेज हैं। वेद लितों पर किए गए दीर्घकालीन अन्याय के साक्षी भी हैं। इन आत्मकथनों ने साहित्य की प्रकृति, उसका तेवर, उसका मिजाज बदलने का काम किया है। इन आत्मकथनों की भाषा, शब्द चयन, वाक्य विन्यास, साहित्य संसार में बहुत कुछ नया जोड़ते हैं। दलितों की जिंदगी के सभी आयाम— सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षिक, राजनीतिक इन आत्मकथनों में दर्ज है। वर्णवादी क्रूरता के तमाम रूप दलित आत्मकथनों में देखे जा सकते हैं। साथ ही दलित जातियों के भीतरमौजूद जातिवाद भी पहचाना जा सकता है। पितृसत्ता के सवाल पर नया मंथन प्रारंभ करने की भूमिका भी इन आत्मकथनों ने निभाई है।

साहित्य को नए पाठक देने का काम भी इस विधा ने किया है।

Index &

- 1 अपेक्षा,पत्रिका के जुलाई-सितंबर, 2003, दलित आत्मवृत्त विशेषांक में प्रकाशित "मेरा बचपन" शीर्षक आत्मकथ ।
- 2 दलित साहित्य: स्वरूप और संवेदना, (2009) सूर्यनारायण रणसुभे द्वारा उद्धृत, "मराठी की दलित आत्मकथा" या 'स्वकथन' शीर्षक अध्याय से
- 3 यादों के पंछी-में अनुवादक द्वारा लिखी गई भूमिका से उद्धृत ।
- 4 अछूत,दया पवार -पृष्ठ 32
- 5 तराल अंतराल, शंकरराव खरात, पृष्ठ- 13
- 6 छांग्या रुक्ख,पृष्ठ -22
- 7 अक्करमाशी ,शरण कुमार लिम्बाले, -पृष्ठ संख्या-120
- 8 छांग्या-रुक्ख,बलवीर माधोपुरी, पृष्ठ- 88